Environmental Protection and Social Work Profession

[Proceeding With Full Paper]

Editors

Dr Bijendr Pradhan
Dr Pushpa Mishra
Mr Ankit Sharma
Dr Vikas Sharma

Scanned by CamScanner

Environmental Protection and Social Work Profession
[Edited Book]

ISBN: 978-93-83634-45-3

© Editing Teem -2019

Editors: Dr. Bijendr Pradhan, Dr. Pushpa Mishra
Mr. Ankit Sharma, Dr. Vikas Sharma

Co-editors: Mr. Ranjit Kumar Jaiswal Mr. Indra Ram Poonia

First Edition: March, 2019

Price: 350/-

Published by: Department of Social Work
Jain Vishva Bharati Institute,
Ladnun-341306 (Rajasthan)

Printed by:

No part of this book may be reproduced or transmitted any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopying, recording or by any information storage and retrieval system, without permission in writing from the publishers.

Cover Page Photo Credits:
https://www.instagram.com/p/BtTV1koHYVX/?utm_source=ig_share_sheet&igshid=1svv9176cp9a

Scanned by CamScanner

17.	Migration Induced by Climate Change: Policies and Actions.	Dr. A. K. Bhartiya Samra Anwer	141-149
18.	Climate Change : A Global Threat and The Role of Social Worker	Diwakar Kumar	150-155
19.	Exploring Innovations in Policy for Agriculture Bioinformatics and Cultivation of Scientific and Sustainable Skills in India	Jiya Choudhary	156-162
20.	Monoculture and polyculture impacts on biodiversity	Gaurav Dixit	163-170
21.	Environment protection & role of social workers	Ambrish Kumar Rai	171-176
22.	Psychiatric Problems Of Elderly		

हिन्दी खण्ड

23.	भगवान महावीर का पर्यावरण दर्शन	डॉ. समणी संगीत प्रज्ञा	191-194
24.	प्रदूषण : एक गम्भीर समस्या	कु. अपराजिता, छात्रा	195-198
25.	वन संरक्षण में जनजातीय समुदाय की सहभागिता	डॉ बिजेन्द्र प्रधान कृष्ण कुमार तिवारी	199-204
26.	पर्यावरण संरक्षण में समाज कार्य की पद्धतियों का प्रयोग	डॉ. लालाराम जाट	205-210
27.	ई–अपशिष्ट–एक पर्यावरणीय समस्या एवम उसका प्रबन्धन।	डॉ. विकास शर्मा	211-214
28.	पर्यावरण संरक्षण एवं वैश्विक राजनीति	डॉ. जुगल किशोर दाधीच	215-220
29.	पर्यावरण संरक्षण और जन चेतना	डॉ. रविन्द्र सिंह राठौड़	221-226
30.	पर्यावरण संरक्षण में पर्यावरण शिक्षा एवं समाजकार्य कर्ता की भूमिका	डॉ. आभा सिंह	227-230
31.	पर्यावरण संरक्षण और अहिंसा	डॉ. हेमलता जोशी	231-234
32.	जैनदर्शन और पर्यावरण–संरक्षणःएक अध्ययन	डॉ. सत्यनारायण भारद्वाज	235-238

Scanned by CamScanner

जैनदर्शन और पर्यावरण-संरक्षण : एक अध्ययन

डॉ. सत्यनारायण भारद्वाज
सहायक आचार्य, प्राकृत एवं संस्कृत विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

ब्रह्माण्ड के समस्त जीवधारियों के समुचित विकास एवं सुव्यवस्थित जीवनक्रम को चलाने के लिए संतुलित पर्यावरण की आवश्यकता होती है। जैनदर्शन में पर्यावरण की समग्रता का स्वरूप उपलब्ध होता है। पर्यावरण के आधुनिक सम्प्रत्यय में मानव–जगत को परिवेष्टित करने वाले पशु–पक्षी, वन, नदी–नाले आदि जलाशय, पर्वत, हवा एवं ध्वनि की सुरक्षा का विचार हुआ है। परन्तु जैनदर्शन इससे बढ़कर सम्पूर्ण प्राणी–जगत की सुरक्षा एवं संरक्षण का विचार करता है। इसके साथ ही भौतिक–अभौतिक पर्यावरण रूप से इसके भेद करके जैनदर्शन ने अभौतिक पर्यावरण को आधारभूत मानकर उसकी सुरक्षा का विचार किया है। अभौतिक पर्यावरण आन्तरिक पर्यावरण में मानव–मन की वृत्तियों, सेवा, प्रेम, बन्धुता, सहयोग, सहनशीलता जैसे मानव–मूल्यों को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है, जिनके अभाव में भौतिक पर्यावरण की सुरक्षा की सफलता एक स्वप्न बनकर ही रह सकती है।

पर्यावरण–असन्तुलन के मुख्य कारण

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण का महत्त्व शुरू से ही रहा है। प्रारम्भ में मानव पर्यावरण के साथ अंगीभूत था। उसने प्रकृति के साथ अपना समन्वय बैठा रखा था तथा कभी भी उसमें परिवर्तन की चेष्टा नहीं की थी। बीसवीं सदी के आते–आते मानव के द्वारा भौतिक, आर्थिक एवं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अप्रत्याशित गति करने की चेष्टा ने पर्यावरण को प्रदूषित कर एक समस्या को पैदा कर दिया। आज पूरा विश्व इससे चिंतित है, समाधान ढूंढने का प्रयास कर रहा है।

पर्यावरण असंतुलन के अनेक कारणों को यदि जैनदर्शन की दृष्टि से एक शब्द में कहा जाए तो वह है– असंयम। भगवान महावीर ने सत्रह प्रकार के संयम की बात कही है।[1] उनमें जीव–संयम और अजीव–संयम दोनों प्रकार के संयम को महत्त्व दिया गया। इन सत्रह प्रकार के संयम में नौ प्रकार का संयम षड्जिवनिकाय से संबधित है। जो इनका संयम नहीं करता वह पर्यावरण को तो प्रदूषित करता ही है किन्तु स्वयं के भी अबोधि और अहित का कारण बनता है। असंयम के अतिरिक्त पर्यावरण असंतुलन के अन्य निम्नलिखित कारण है–

1. प्राकृतिक संसाधनों का अभाव।
2. प्रकृति का अत्यधिक दोहन।
3. कृत्रिम आवश्यकताएं।
4. उपभोक्तावादी संस्कृति।
5. लोभ की प्रवृत्ति।
6. सुविधावादी मनोवृत्ति।
7. विकास के भ्रामक मापदण्ड आदि।

पर्यावरण–संरक्षण के मूलभूत उपाय

आज विश्व में असंतुलित पर्यावरण की गंभीर समस्या है, जो समाज के सभी वर्गों के लोगों को सोचने के लिए मजबूर कर रही है। ऐसी आशंका व्यक्त की जा रही है कि इस क्षेत्र में यदि प्रभावी कदम नहीं उठाए गए तो आने वाले वर्षों में मनुष्य के लिए जिन्दा रहना भी मुश्किल हो जाएगा। मानव–विकास के लिए स्वच्छ एवं संतुलित पर्यावरण की महती आवश्यकता है।

भगवान महावीर ने 2600 वर्ष पूर्व जो जीने का दर्शन दिया, उसमें पर्यावरण–संतुलन और सृष्टि–संतुलन की दृष्टि से अनेक महत्त्वपूर्ण सूत्र उपलब्ध होते हैं। भगवान महावीर अहिंसा के प्रयोक्ता थे। उन्होंने

Scanned by CamScanner

अहिंसा को अनेक पहलुओं से देखा। उनमें एक पहलु है– पर्यावरण विज्ञान। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति को जहां अन्य दर्शनों में पंचभूत के रूप में स्वीकार किया गया, वहीं वैदिक परम्परा में इन्हें देव माना गया है। भगवान महावीर ने एक नई और मौलिक अवधारण दी और कहा– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस–ये सब जीव हैं।[2] इनके अस्तित्व को अस्वीकार करने वाला स्वयं अपने अस्तितव को अस्वीकार करता है। इनके अस्तितव को स्वीकार करने वाला ही पर्यावरण के साथ न्याय कर सकता है।

1. षड्जीवनिकाय का संयम

जैन दर्शन में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति एवं त्रस् को जीव माना गया है। ये सभी मिलकर पर्यावरण की रचना करते हैं तथा संतुलन बनाये रखने के लिए एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। किसी एक तत्त्व के असंतुलन से सम्पूर्ण पर्यावरण प्रभावित होता है। अतः भगवान महावीर ने कहा–विवेकी मनुष्य, पृथ्वी, पानी आदि की हिंसा के परिणाम को जानकर न स्वयं इनकी हिंसा करें, न दूसरों से इनकी हिंसा करवाएं और न ही हिंसा करने वालों का अनुमोदन करें।[3] पृथ्वी, पानी आदि की हिंसा करने वाला केवल इनकी ही हिंसा नहीं करता अपितु इनके आश्रित अनेक त्रस जीवों की भी हिंसा करता है। इन षड्जीवनिकायों की हिंसा नहीं करने के संदर्भ में जैनदर्शन के जो निर्देश हैं, वे पर्यावरण को संरक्षित रखने की दृष्टि से सर्वाधिक मूल्यवान हैं।

आज अनेक प्रकार के खनिज पदार्थों के लिए पृथ्वीकाय की हिंसा की जाती है। वैज्ञानिकों ने यह आशंका व्यक्त की है कि इसी प्रकार यदि पृथ्वी का दोहन होता रहा तो ये भण्डार कुछ ही समय में समाप्त हो जाएंगे। अतः हमें पृथ्वी के दोहन में संयम रखना चाहिए।

हजारों मिलियन कचरा, मल आदि जल में फेंका जा रहा है, जिससे उसका जल तो पदूषित होता है जलकाय की भी हिंसा होती ही है। जल में रहने वाले जीव, जैसे मछली एंव अन्य प्राणी उस प्रदूषण से प्रभावित होते हैं। उन्हीं जंतुओं का प्रयोग जब मनुष्य खाने के लिए करता है तो वह विषाक्त भोजन अनेक बीमारियों क कारण बनता है।

अग्निकाय का असंयम करने से ऊर्जा के स्रोत कम हो रहे हैं। इससे उद्योग, चिकित्सा आदि सभी क्रिया कलाप प्रभावित हो रहे हैं। वायु प्रदूषण में भी अग्निकाय का असंयम ही अधिक निमित्त बन रहा है। प्रमुख वैज्ञानिक श्री टी.एम. दास का कहना है कि यह वायुमण्डलीय प्रदूषण केवल मानव के लिए ही नहीं अपितु प्राणीमात्र के लिए भी हानिकारक है। इस प्रकार पृथ्वी, जल आदि की हिंसा आध्यात्मिक दृष्टि से ही नहीं, पर्यावरण की दृष्टि से भी अवांछनीय है।

2. वनस्पतिकाय का संयम

आचारांगसूत्र में वनस्पति और मनुष्य के जीवन में बहुत सारी समानताओं का उल्लेख कर, उनकी हिंसा से विरत रहने का निर्देश दिया गया है। प्रकृति की दृष्टि में एक पौधे का जीवन भी उतना ही मूल्यवान है, जितना एक मनुष्य का है। पेड़–पौधे पर्यावरण को प्रदूषण से मुक्त करने में जितने सहायक हैं, उतने मनुष्य नहीं हैं, वे तो पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं। वृक्षों एवं वनों के संरक्षण तथा वनस्पति के दुरूपयोग से बचने के लिए प्राचीन जैन साहित्य में अनेक निर्देश दिये गए हैं। मुनि के लिए तो हरित–वनस्पति को काटने एवं तोड़ने की बात तो दूर उसे स्पर्श करने का भी निषेध है। श्रावक के लिए भी वनस्पति के यथाशक्ति सीमित उपयोग का निर्देश है। वनों को काटना, वनों में आग लगाना आदि क्रियाओं में महापाप माना गया है क्योंकि उसमें न केवल वनस्पति की हिंसा होती है, अपितु अन्य वन्य–जीवों की भी हिंसा होती है और पर्यावरण भी प्रदूषित होता है। वन, वर्षा और पर्यावरण को संरक्षित रखने के अनुपम साधन है।

3. इच्छाओं का संयम

पर्यावरण संतुलन का एक महत्त्वपूर्ण उपाय है– इच्छाओं का संयम। व्यक्ति की आवश्यकताएं सीमित हैं पर असीम इच्छाओं की पूर्ति के लिए वह प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करता है। परिणामस्वरूप पर्यावरण असंतुलित होता है। प्रकृति में इतनी क्षमता है कि वह संसार के सभी प्राणियों का भरण–पोषण कर सकती है पर प्रकृति में इतनी क्षमता नहीं है कि वह एक भी मनुष्य की इच्छाओं को पूरा कर सके। इच्छाओं पर नियंत्रण पाने के लिए भगवान महावीर ने श्रावक के बारह व्रतों में इच्छा परिमाण–व्रत की बात कही।[4] इच्छा जहां पर्यावरण को असंतुलित बनाती है, वहीं व्यक्ति को भी दुःखी बनाती है।

Scanned by CamScanner

4. पदार्थों के भोगोपभोग का संयम

तीव्रता से बढ़ती हुई उपभोक्तावादी संस्कृति ने भी पर्यावरण को असंतुलित किया है। उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण जीवन के आवश्यक स्रोतों का इतनी तीव्रता से और इतनी अधिक मात्रा में दोहन हो रहा है कि प्राकृतिक स्रोत समाप्त होते जा रहे हैं। इस संदर्भ में आज भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित 'भोगोपभोग परिमाण व्रत'[5] की प्रासंगिकता को नकारा नहीं जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन में पदार्थों के भोग की सीमा कर ले तो काफी सीमा तक पर्यावरण की समस्या का समाधान किया जा सकता है।

5. यातायात का संयम

पर्यावरण–प्रदूषण में धुआ छोड़ने वाले वाहनों का प्रयोग भी एक प्रमुख कारण है। आज व्यक्ति को दस कदम भी चलना हो तो वह वाहन की अपेक्षा रखता है, पैदल चलना पसन्द नहीं करता। यदि दो–चार किलोमीटर चलने में अथवा अपने दैनन्दिन कार्यों में वाहन का प्रयोग न करें, अनावश्यक यातायात की भी सीमा करें तो इससे दोहरा लाभ हो सकता है। एक ओर ईधन एवं तत्संबंधी खर्च से बचाव होता है तो दूसरी ओर पर्यावरण प्रदूषित होने से बचता है। भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित दिग्व्रत[6] का आशय भी यही है कि अनावश्यक यातायात का संयम हो।

6. शस्त्रों का संयम

आज विश्व में आणविक एवं रासायनिक शस्त्रों में वृद्धि हो रही है और उनके परीक्षणों तथा युद्ध में उनके प्रयोगों के माध्यम से पर्यावरण में असंतुलन उत्पन्न हो रहा है। इनका प्रयोग न केवल मानव जाति के लिए अपितु समस्त प्राणि–जाति के अस्तित्व के लिए खतरा है। भगवान महावीर ने इस सत्य को पहले ही समझ लिया था इसीलिए आचारांग में उन्होंने कहा– 'अत्थि सत्थं परेणपरं नत्थि असत्थं परेणपरं' अर्थात् शस्त्रों में एक से बढ़कर एक शस्त्र हो सकते हैं किन्तु अशस्त्र (अहिंसा) से बढ़कर कुछ नहीं है। निःशस्त्रीकरण का यह संदेश ही मानवता के अस्तित्व के अस्त्वि को सुरक्षित एवं पर्यावरण को संतुलित रख सकता है।

इस प्रकार भगवान महावीर ने संयम के सूत्र दिये वे पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से भी पठनीय, मननीय, चिन्तनीय और आचरणीय हैं। वे सूत्र हैं– इच्छाओं का संयम करो, पदार्थों के व्यक्तिगत भोग का संयम करो। मैत्री, अहिंसा, अपरिग्रह की चेतना का विकास करो। अनर्थ हिंसा, महारंभ, महापरिग्रह से बचो। उन्होंने ऐसे औद्योगिक प्रतिष्ठानों एवं उत्पादनों को भी उचित नहीं ठहराया, जिनके कारण प्रदूषण फैलता हो या समाज में आर्थिक विकृतियां जन्म लेती हों। उन्होंने बारह व्रतात्मक एक ऐसी जीवनशैली का प्रारूप प्रस्तुत किया, जिसके आचरण से समाज, देश, राष्ट्र का ही नहीं सम्पूर्ण विश्व का पर्यावरण संरक्षित रह सकता है।

पर्यावरण–रक्षक आहार : शाकाहार

शाकाहार स्वाभाविक प्राकृतिक आहार है। जीवाश्म विज्ञानी डॉ. एलनवॉकर (मैरीलैंड जानहीपकिंस विश्वविद्यालय) की वर्षों की खोज का निष्कर्ष है कि मनुष्य का अस्तित्व पन्द्रह करोड़ वर्ष प्राचीन है तथा प्रारम्भ के चौदह करोड़ पचानवे लाख वर्षों तक मनुष्य ने फल–फूल, कंद–मूल, पत्ते आदि खाकर ही उदरपूर्ति की।

शाकार का 'शा' शान्ति का, 'का' कान्ति का, 'हा' हार्द (स्नेह) का और 'र' रक्षा का परिचायक है। शाकाहार हमें शांति का जीवन देकर हमारे चेहरे की कान्तिवृद्धि में सहायक होता है, जिससे हम स्नेह की धारा बहाकर, अपने जीवन को रसमय बना सकते हैं। जैनदर्शन में शाकाहार एवं रात्रिभोजन त्याग पर अत्यधिक बल दिया गया है। इसके लिए हम सभी को यह प्रतिज्ञा लेनी होगी कि– "मैं अपने उदर की पूर्ति वनस्पतिक तथा अहिंसक आहार से करूँगा तथा अपने भोज्य व अन्य उपयोग के लिए मूक प्राणियों का वध नहीं करूंगा।" प्रत्येक व्यक्ति के मात्र इस एक व्रत से सम्पूर्ण पर्यावरण प्रभावित होता है। अतः शाकाहार न केवल स्वास्थ्यवर्धक आहार है अपितु पर्यावरण रक्षक आहार भी है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि केवल भौतिक या बाह्य पर्यावरण का सरंक्षण ही पर्याप्त नहीं है। उसके साथ अभौतिक या आतंरिक पर्यावरण का संरक्षण भी परमावश्यक है, जिसमें मानव–मन की

Scanned by CamScanner

वृत्तियों, भावनाओं, विचारधाराओं एवं प्रेमबंधुता, सेवा, स्वार्थ, त्याग जैसे मानव–मूल्यों का भी समावेश है। जब तक इस अभौतिक पर्यावरण के संरक्षण का विचार नहीं किया जाता तब तक भौतिक या बाह्य पर्यावरण का पूर्ण संरक्षण नहीं किया जा सकता। स्वार्थ जैसी घातक प्रवृत्ति को अपनाकर आज व्यक्ति समस्त पर्यावरण को आग लगाकर भी अपनी रोटी सेकने को तत्पर है। अर्थोपार्जन की अंधी दौड़ में मानव विवेक दृष्टि खो चुका है। वह पर्यावरण को भयानक हानि पहुंचाते भी नहीं हिचकिचाता। यही कारण है कि बड़े–बड़े उद्योगपति अर्थ–लाभ हेतु पर्यावरण की कितनी हानि कर रहे हैं। स्वार्थ में मानव धनांध बनकर कितने जंगल काट चुका है कितने जानवरों को बेकसूर प्राणियों को मौत के घाट उतार चुका है और आज भी इस घ्रणित कार्य में संलग्न है। अतः वर्तमान संदर्भ में जैनदर्शन के सिद्धान्त अत्यन्त प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण है।

सन्दर्भ

1. अंगसुत्तणि 1, समवाओ 17/2, मूलाचार, 416/417
2. आचारांगभाष्य, अ. 1, सूत्र 16 का भाष्य
3. आचारांगभाष्य, अ. 1, सूत्र 22 का भाष्य
4. उवासगदसावो, अ. 1, सूत्र 28
5. उवासगदसावो, अ. 1, सूत्र 29
6. उवासगदसावो, अ. 1, सूत्र 37

□□□

Scanned by CamScanner